[2019] 4 उम. नि. प. 405

पाम डेवलेपमेंट्स प्राइवेट लि.

बनाम

पश्चिम बंगाल राज्य

[2019 की सिविल अपील सं. 5432]

12 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन और न्यायमूर्ति विनीत सरन

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 2) – धारा 34 और 36(2)(3) (2016 के अधिनियम सं. 3 द्वारा यथा संशोधित) [सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 का आदेश 27, नियम 8क और आदेश 41, नियम 5(5)] – सरकार के विरुद्ध माध्यस्थम् पंचाट अपास्त करने के लिए आवेदन – आवेदन खारिज हो जाना – माध्यस्थम् पंचाट के प्रवर्तन पर रोक मंजूर करने के लिए आवेदन फाइल किया जाना – सरकार के विरुद्ध धनीय डिक्री के निष्पादन पर डिक्रीत रकम या उसके भाग का निक्षेप करने या प्रतिभूति देने की शर्त के बिना रोक मंजूर किया जाना – चूंकि माध्यस्थम् अधिनियम में सरकार के विरुद्ध पंचाट को अपास्त करने के लिए रोक के आवेदन पर विचार करते समय सरकार के साथ विशेष बर्ताव करने का उपबंध नहीं किया गया है और सिविल प्रक्रिया संहिता में सरकार को प्रतिभूति देने से छूट माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन किसी धनीय डिक्री में न्यायालय को अधिनिर्णीत रकम या उसके भाग को निक्षेप करने का निदेश देने से निर्बंधित नहीं करती है, अतः, अशर्त रोक आदेश को कायम रखना न्यायोचित नहीं होगा ।

अपील के तथ्यों के अनुसार, प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य के हुगली जिले में हुगली राजमार्ग मंडल द्वारा राजमार्ग की मरम्मत के लिए जारी की गई निविदा आमंत्रित सूचना के उत्तर में अपीलार्थी और अन्यों ने आवेदन किया था । अपीलार्थी की बोली तारीख 26 मार्च, 2001 को स्वीकार की गई थी, जिसके लिए तारीख 2 अप्रैल, 2001 को एक करार रजिस्ट्रीकृत किया गया था । अपीलार्थी द्वारा करार के अधीन कार्य को,

प्रत्यर्थी द्वारा विलंब के लिए, अपीलार्थी के अनुसार जिसके लिए पूर्णत: प्रत्यर्थी उत्तरदायी था, प्रदान किए गए कई समय-विस्तार के पश्चात् तारीख 28 फरवरी, 2002 को पूरा किया गया था । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने तारीख 26 मई, 2003 को कार्यपालक इंजीनियर, लोक निर्माण (सड़क) विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार के समक्ष अपने दावे और शोध्य प्रस्तुत किए । अपीलार्थी के दावों का संदाय न होने पर अपीलार्थी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में 'माध्यस्थम् अधिनियम') की धारा 11(6) के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 2003 के आदेश द्वारा सेवानिवृत्त न्यायाधीश सुजित कुमार सिन्हा को विवादों का विनिश्चय कराने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया । मध्यस्थ ने तारीख 21 जनवरी, 2010 के अपने पंचाट द्वारा अपीलार्थी के कुछ दावों को मंजूर किया और अपीलार्थी को 2,87,11,553/- रुपए की राशि के अतिरिक्त 1,34,06,965/- रुपए की राशि पर पंचाट की तारीख से संदाय करने की तारीख तक 18 प्रतिशत की दर से वार्षिक ब्याज का हकदार ठहराया । मध्यस्थ द्वारा पारित किए गए पंचाट को चुनौती देते हुए प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । अपीलार्थी ने पूर्वोक्त के विरोध में अपना शपथपत्र फाइल किया और प्रत्यर्थी द्वारा उसका भी उत्तर फाइल किया गया । निष्पादन की कार्यवाहियों में निष्पादन न्यायालय ने तारीख 18 सितम्बर, 2018 को मामला यह अभिलिखित करते हुए स्थगित कर दिया कि "स्थगित तारीख तक पंचाट के प्रवर्तन को न रोके जाने की दशा में आवेदक उक्त पंचाट के निष्पादन में उक्त रकम की कुर्की के लिए प्रार्थना करने का हकदार होगा ।" इसी बीच, प्रत्यर्थी ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों में माध्यस्थम् अधिनियम की संशोधित धारा 36(2) के अधीन रोक आवेदन फाइल किया । प्रत्यर्थी का रोक आवेदन तारीख 27 सितम्बर, 2018 को व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया । परिणामत:, तारीख 3 अक्तूबर, 2018 को, जो निष्पादन न्यायालय द्वारा 2018 के निष्पादन मामला सं. 297 में नियत की गई स्थगित तारीख थी, निष्पादन

न्यायालय ने भारत के रिजर्व बैक के पास प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य के जमा 2.75 करोड़ रुपए की राशि को कुर्क करने को आदेश पारित किया । यह भी स्पष्ट किया गया कि स्थगित तारीख (4 दिसम्बर, 2018) तक पंचाट के प्रवर्तन को न रोक जाने की दशा में, अपीलार्थी (पंचाट धारक) उक्त रकम को निर्मोचित करने के लिए प्रार्थना करने हेतु स्वतंत्र होगा । निष्पादन न्यायालय ने उच्च न्यायालय की एक समन्वय पीठ के तारीख 5 सितम्बर, 2018 के आदेश का, जिसमें राज्य सरकार को पंचाट पर अशर्त रोक मंजूर की गई थी और उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका आरंभ में ही खारिज हो गई थी, अवलंब लेते हुए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया निष्पादन आवेदन खारिज कर दिया । प्रत्यर्थी ने तारीख 27 सितम्बर, 2018 के उस आदेश को वापस लेने का आवेदन फाइल किए बिना, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी के रोक आवेदन को व्यतिक्रम के कारण आरंभ में ही खारिज कर दिया गया था, पंचाट पर रोक लगाने के लिए एक नया आवेदन फाइल किया, जिसमें सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 नियम 8क के उपबंधों का अवलंब लेने के पश्चात् तारीख 13 दिसम्बर, 2018 को अशर्त रोक का आक्षेपित आदेश पारित किया गया । वर्तमान अपील फाइल की गई है । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के उक्त आदेश को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – माध्यस्थम् अधिनियम, 1996 की धारा 36 की उपधारा (3) यह आदिष्ट है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल करने के साथ या फाइल करने के पश्चात् फाइल किए गए रोक आवेदन पर विचार करते समय, यदि रोक मंजूर की जानी है तब यह ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए होगी जो ठीक समझी जाएं । उक्त उपधारा में स्पष्ट तौर पर यह आदिष्ट किया गया है कि पंचाट के प्रवर्तन को रोके जाने की मंजूरी लेखबद्ध किए गए कारणों से "ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए होगी जो न्यायालय ठीक समझे" । इस धारा के परंतुक में स्पष्ट किया गया है कि न्यायालय "सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन किसी धनीय डिक्री के निष्पादन पर रोक मंजूर करने वाले उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखेगा" । "सम्यक् ध्यान में रखेगा"

वाक्यांश का केवल यह अर्थ होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को विचार में लिया जाना चाहिए और इसका यह अर्थ नहीं है कि वे आज्ञापक हैं । न्यायालय के मत में, वर्तमान संदर्भ में, प्रयुक्त वाक्यांश सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों 'को ध्यान में रखते हुए, है, न कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों 'के अनुसार' है । पश्चातवर्ती दशा में, ये आज्ञापक होते, किंतु माध्यस्थम अधिनियम के नियम 36(3) में यथावर्णित रूप में ये केवल निदेशात्मक या मार्गदर्शक कारक के रूप में होंगे । उक्त धारा 36 में सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रतिनिर्देश मात्र से इसका ऐसी रीति में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है कि यह बात स्वयं मुख्य कानून (माध्यस्थम् अधिनियम) में प्रदत्त शक्ति को छीन लेती है । इसे एक सामान्य मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में लिया जाना चाहिए, जो माध्यस्थम् अधिनियम के मुख्य उपबंध को अप्रयोज्य नहीं बनाएगा । सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध एक मार्गदर्शक के रूप में अनुसरण किए जाने चाहिए, जबकि माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों को आवश्यक रूप से पहले लागू किया जाना चाहिए । चूंकि, माध्यस्थम् अधिनियम एक स्वत: पूर्ण अधिनियम है, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध केवल वहां लागू होंगे जहां तक वे माध्यस्थम् अधिनियम की भावना और उपबंधों के असंगत न हों । अन्यथा भी, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के अनुशीलन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नियम केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 5 और 6 में यथा वर्णित प्रतिभूति के संबंध में है, जिसकी सरकार द्वारा फाइल किए गए रोक आवेदन पर विचार करते समय मांग नहीं की जानी चाहिए । तथापि, इसमें यह उपबंधित नहीं है कि किसी धनीय डिक्री के विरुद्ध अपील में डिक्रीत रकम जमा किए जाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है । न्यायालय के सुविचारित मत में, जो उपबंध ब्रिटिश राज के दौरान सरकार (जो तब ब्रिटिश क्राउन था) को कतिपय रक्षोपाय देने के लिए वर्ष 1937 में सम्मिलित किया गया था वह आज के समय में, जब हमारे यहां एक लोकतांत्रिक सरकार है, लागू नहीं होगा । माध्यस्थम् कार्यवाहियां विवादों का जल्दी/शीघ्र समाधान करने के प्रयोजनार्थ आवश्यक रूप से आनुकल्पिक विवाद निवारण व्यवस्था है और यदि मध्यस्थ द्वारा सरकार के विरुद्ध यथा पारित

धनीय डिक्री-पंचाट को स्वत: रोक दिए जाने की अनुज्ञा दी जाती है, तो माध्यस्थम् के द्वारा विवाद का शीघ्र समाधान करने का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा क्योंकि डिक्रीदार माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल करने मात्र से पंचाट के फायदों से पूरी तरह वंचित हो जाएगा । माध्यस्थम् अधिनयम एक विशेष अधिनियम है जिसमें पक्षकारों के बीच विवादों का शीघ्र निपटान करने का उपबंध किया गया है और अधिनियम की धारा 18 में यह स्पष्ट किया गया है कि पक्षकारों के साथ समानता का बर्ताव किया जाएगा । जब अधिनियम में ऐसा आदिष्ट है, तो एक पक्षकार के रूप में सरकार को दिया गया कोई विशेष बर्ताव नहीं हो सकता है । इसलिए माध्यस्थम् अधिनियम की स्कीम के अधीन, कोई विभेद नहीं किया गया है और न ही माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में किसी धनीय डिक्री पर रोक मंजूर करने के आवेदन पर विचार करते समय सरकार से कोई विशेष बर्ताव किया जाना चाहिए । जैसा कि हमने पहले ही ऊपर उल्लेख किया है, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 में सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रतिनिर्देश न्यायालय के केवल इस मार्गदर्शन के लिए है कि कौन-सी शर्तें अधिरोपित की जा सकती है और वे शर्तें माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिए । यह सत्य हो सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता में सरकार से कतिपय मामलों में विशेष बर्ताव करने का उपबंध किया गया है, किंतु माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन सरकार के विरुद्ध किसी मामले पर विचार करते समय ऐसा बर्ताव इस प्रकार लागू नहीं किया जा सकेगा । उदाहरण के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 में सरकार के विरुद्ध कोई वाद संस्थित करने से पूर्व दो माह की सूचना दिए जाने का उपबंध है । इसके अतिरिक्त, इसमें यह भी उपबंधित है कि सरकार के विरुद्ध कोई एकपक्षीय व्यादेश पारित नहीं किया जा सकता है । जबकि दूसरी ओर, माध्यस्थम् अधिनियम में सरकार द्वारा या सरकार के विरुद्ध माध्यस्थम् के विषय में ऐसा कोई विशेष उपबंध नहीं किया गया है । माध्यस्थम् अधिनियम में सरकार के विरुद्ध माध्यस्थम् कार्यवाहियों का अवलंब लेने से पूर्व सरकार को दो माह की सूचना दिया जाना अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 9 और 17 में सरकार के विरुद्ध एकपक्षीय अंतरिम आदेश प्रदान करने का भी उपबंध किया गया है ।

माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 में भी माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में रोक मंजूर करने के आवेदन पर विचार करते समय सरकार से कोई विशेष बर्ताव करने का उपबंध नहीं किया गया है । पूर्वोक्त के साथ-साथ धारा 18 के उपबंधों, जिनमें पक्षकारों से समान बर्ताव करने का उपबंध किया गया है, पर विचार करते हुए न्यायालय के मत में, यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा कोई आपवादिक बर्ताव नहीं है जो माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन रोक के लिए आवेदन पर विचार करते हुए सरकार के साथ किया जाना चाहिए । यद्यपि, न्यायालय का यह दृढ़ मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 के पुरातन नियम 8क का वर्तमान समय में कोई उपयोजन या निर्देश नहीं है, न्यायालय केवल यह मत व्यक्त करना चाहेगा कि यदि यह मान लिया जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंध लागू किए जाने चाहिए, फिर भी ये केवल सरकार को प्रतिभूति देने से छूट देंगे, जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 5 के अधीन न्यायालय को डिक्रीत रकम का पूर्णत: या भागत: निक्षेप करने और/या प्रतिभूति देने का निदेश देने की शक्ति है, जो न्यायालय को अधिनिर्णीत रकम और इसके भाग को निक्षेप करने का निदेश देने से निर्बंधित नहीं करेगी । (पैरा 17, 18, 20, 23, 24, 25, 26 और 27)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2018] (2018) 6 एस. सी. सी. 287 :
भारत में क्रिकेट के लिए नियंत्रण बोर्ड बनाम
कोच्चि क्रिकेट प्राइवेट लिमिटेड ; 3

[1990] (1990) 3 एस. सी. सी. 223 :
श्रीसीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम **भारत संघ** ; 17

[1967] (1967) 2 एस. सी. सी. 170 :
अधीक्षक और विधि परामर्शी, पश्चिम बंगाल राज्य बनाम
कलकत्ता निगम । 22

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2019 की सिविल अपील सं. 5432. (इसके साथ 2019 की सिविल अपील सं. 5433)

2010 की माध्यस्थम् याचिका सं. 212 में 2018 की सरकारी अपील सं. 2680 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के तारीख 13 दिसम्बर, 2018 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सौरव अग्रवाल, प्रियंकर साहा, सरद कुमार सिंघानिया, (सुश्री) रश्मि सिंघानिया, रजत कपूर, अंशुमान चौधरी, (सुश्री) जी. गोयल और सुभासिश भौमिक

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री आनंद ग्रोवर, ज्येष्ठ अधिवक्ता, (सुश्री) चित्र लेखा दास, सुहान मुकर्जी, (सुश्री) आस्था शर्मा, अमित वर्मा, प्रस्तुत दाल्वी और (सुश्री) डिपंल नागपाल (पीएलआर चैम्बर्स एंड कं. की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति विनीत सरन ने दिया ।

न्या. सरन – इजाजत दी गई ।

2. प्रत्यर्थी द्वारा "हुगली जिले में हुगली राजमार्ग मंडल सं. 2 (पैकेज सं. 2) के अधीन राष्ट्रीय राजमार्ग-2 के विभिन्न खंडों, 622 केएमपी से 625 केएमपी, 627 केएमपी से 628 केएमपी और 630 केएमपी से 631 केएमपी के लिए (जाब सं. सीआरएफ/डब्ल्यू.बी./70/2000 द्वारा) विशेष मरम्मत कार्यक्रम 2000-2001" के कार्य के संबंध में जारी की गई निविदा आमंत्रित सूचना के उत्तर में अपीलार्थी और अन्यों ने आवेदन किया था । अपीलार्थी की बोली तारीख 26 मार्च, 2001 को स्वीकार की गई थी, जिसके लिए तारीख 2 अप्रैल, 2001 को एक करार रजिस्ट्रीकृत किया गया था । अपीलार्थी द्वारा करार के अधीन कार्य को, प्रत्यर्थी द्वारा विलंब के लिए, अपीलार्थी के अनुसार जिसके लिए पूर्णत: प्रत्यर्थी उत्तरदायी था, प्रदान किए गए कई समय-विस्तार के

पश्चात् तारीख 28 फरवरी, 2002 को पूरा किया गया था । इसके पश्चात्, अपीलार्थी ने तारीख 26 मई, 2003 को कार्यपालक इंजीनियर, लोक निर्माण (सड़क) विभाग, पश्चिम बंगाल सरकार के समक्ष अपने दावे और शोध्य प्रस्तुत किए । अपीलार्थी के दावों का संदाय न होने पर अपीलार्थी द्वारा माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (संक्षेप में 'माध्यस्थम् अधिनियम') की धारा 11(6) के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया । कलकत्ता उच्च न्यायालय ने तारीख 14 अगस्त, 2003 के आदेश द्वारा सेवानिवृत्त न्यायाधीश सुजित कुमार सिन्हा को विवादों का विनिश्चय करने के लिए मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया । मध्यस्थ ने तारीख 21 जनवरी, 2010 के अपने पंचाट द्वारा अपीलार्थी के कुछ दावों को मंजूर किया और अपीलार्थी को 2,87,11,553/- रुपए की राशि के अतिरिक्त 1,34,06,965/- रुपए की राशि पर पंचाट की तारीख से संदाय करने की तारीख तक 18 प्रतिशत की दर से वार्षिक ब्याज का हकदार ठहराया । मध्यस्थ द्वारा पारित किए गए पंचाट को चुनौती देते हुए प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । अपीलार्थी ने पूर्वोक्त के विरोध में अपना शपथपत्र फाइल किया और प्रत्यर्थी द्वारा उसका भी उत्तर फाइल किया गया । मामला अभी भी कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष विचार के लिए लंबित है ।

3. माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 को 2016 के अधिनियम सं. 3 द्वारा 23 अक्तूबर, 2015 से भूतलक्षी प्रभाव से संशोधित किया गया था । माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के पूर्व-संशोधित उपबंध को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में व्यादेश आवेदन फाइल नहीं किया था । तथापि, **भारत में क्रिकेट के लिए नियंत्रण बोर्ड** बनाम **कोच्चि क्रिकेट प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा सुनाए गए निर्णय, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के संशोधित उपबंध माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन लंबित कार्यवाहियों को भी लागू होंगे, को ध्यान में

---

[1] (2018) 6 एस. सी. सी. 287.

रखते हुए अपीलार्थी ने कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष एक निष्पादन आवेदन (2018 के ई.सी. सं. 297 के रूप में रजिस्ट्रीकृत) फाइल किया । प्रत्यर्थी ने इसके पश्चात् पंचाट को रोकने के लिए आवेदन फाइल करने हेतु समय देने की ईप्सा की ।

4. निष्पादन की कार्यवाहियों में निष्पादन न्यायालय ने तारीख 18 सितम्बर, 2018 को मामला यह अभिलिखित करते हुए स्थगित कर दिया कि "स्थगित तारीख तक पंचाट के प्रवर्तन को न रोके जाने की दशा में आवेदक उक्त पंचाट के निष्पादन में उक्त रकम की कुर्की के लिए प्रार्थना करने का हकदार होगा ।" इसी बीच, प्रत्यर्थी ने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कलकत्ता उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित कार्यवाहियों में माध्यस्थम् अधिनियम की संशोधित धारा 36(2) के अधीन रोक आवेदन फाइल किया । प्रत्यर्थी का रोक आवेदन तारीख 27 सितम्बर, 2018 को व्यतिक्रम के कारण खारिज कर दिया गया । परिणामतः, तारीख 3 अक्तूबर, 2018 को, जो निष्पादन न्यायालय द्वारा 2018 के निष्पादन मामला सं. 297 में नियत की गई स्थगित तारीख थी, निष्पादन न्यायालय ने भारत के रिजर्व बैंक के पास प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य के जमा 2.75 करोड़ रुपए की राशि को कुर्क करने को आदेश पारित किया । यह भी स्पष्ट किया गया कि स्थगित तारीख (4 दिसम्बर, 2018) तक पंचाट के प्रवर्तन को न रोके जाने की दशा में, अपीलार्थी (पंचाट धारक) उक्त रकम को निर्मोचित करने के लिए प्रार्थना करने हेतु स्वतंत्र होगा । निष्पादन न्यायालय ने उच्च न्यायालय की एक समन्वय पीठ के तारीख 5 सितम्बर, 2018 के आदेश का, जिसमें राज्य सरकार को पंचाट पर अशर्त रोक मंजूर की गई थी और उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका आरंभ में ही खारिज हो गई थी, अवलंब लेते हुए अपीलार्थी द्वारा फाइल किया गया निष्पादन आवेदन खारिज कर दिया ।

5. प्रत्यर्थी ने तारीख 27 सितम्बर, 2018 के उस आदेश को वापस लेने का आवेदन फाइल किए बिना, जिसके द्वारा प्रत्यर्थी के रोक आवेदन को व्यतिक्रम के कारण आरंभ में ही खारिज कर दिया था, पंचाट पर रोक लगाने के लिए एक नया आवेदन फाइल किया, जिसमें

सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंधों का अवलंब लेने के पश्चात् तारीख 13 दिसम्बर, 2018 को अशर्त रोक का आक्षेपित आदेश पारित किया गया । उक्त आदेश को चुनौती देते हुए वर्तमान अपील फाइल की गई है ।

6. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री सौरव अग्रवाल की दलील के दो भाग हैं । प्रथम, यह कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंध प्रस्तुत मामले को लागू नहीं होंगे और इसलिए न्यायालय को इस पर माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के अधीन पंचाट पर रोक लगाने के आवेदन का विनिश्चय करते समय विचार नहीं करना चाहिए था । द्वितीयतः, यह दलील दी गई कि यदि आदेश 27, नियम 8क के उपबंध पर विचार किया भी जाता है, तब भी न्यायालयों को पंचाट पर अशर्त रोक का आदेश पारित नहीं करना चाहिए और फिर भी अधिनिर्णीत रकम को जमा करने का निदेश दे सकते हैं ।

7. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल की दलील यह है कि माघ्यस्थम् अधिनियम की संशोधित धारा 36 के अनुसार, पंचाट माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल करने पर स्वयमेव अप्रवर्तनीय नहीं हो जाएगा जब तक कि न्यायालय द्वारा धारा 36 की उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार पंचाट के प्रवर्तन पर रोक नहीं लगाई जाती है । यह दलील दी गई है कि धारा 36 की उपधारा (3) में यह उपबंधित है कि "न्यायालय ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जो वह ठीक समझे, ऐसे पंचाट के प्रवर्तन पर, लेखबद्ध किए गए कारणों से, रोक मंजूर कर सकेगा ।" अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल के अनुसार, उक्त धारा के परंतुक में केवल यह उपबंधित है कि रोक मंजूर करने के आवेदन पर "सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन धनीय डिक्री पर रोक मंजूर करने के लिए उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखते हुए" विचार किया जाएगा । इस प्रकार, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई है कि धारा 36 की उपधारा (3) के अधीन, सिविल प्रक्रिया संहिता धारा 36 की उपधारा (2) के उपबंधों "के अध्यधीन रहते हुए" लागू होगी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, शर्तों "के अध्यधीन रहते हुए" वाक्यांश का यह अर्थ है कि न्यायालय यदि वह

पंचाट पर रोक प्रदान करने का विनिश्चय करता है, तो ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए आबद्धकर है, जो वह ठीक समझे, इसका अर्थ यह है कि रोक की मंजूरी सशर्त होनी चाहिए । यह भी दलील दी गई कि इस धारा के परंतुक में केवल यह कहा गया है कि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को "सम्यक् ध्यान में रखेगा," जिसका यह अर्थ है कि न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता के उक्त उपबंधों को मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में ध्यान में रखेगा और यह उपबंध आज्ञापक नहीं होंगे । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि माध्यस्थम् अधिनियम स्वत: एक पूर्ण संहिता है और रोक आवेदन पर विचार माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के उपबंधों के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए, जो सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों "के अनुसार" जैसा नहीं है । जोरदार रूप से तर्क दिया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंधों को, जो कि सिविल प्रक्रिया संहिता में एक अपवाद है, माध्यस्थम् अधिनियम में नहीं लाया जाना चाहिए क्योंकि इसके परिणामस्वरूप स्वत: माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 का प्रभाव सीमित हो जाएगा । विद्वान् कांउसेल के अनुसार, न्यायालय को माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का विनिश्चय करते समय केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 5 के उपबंधों पर ही साधारण मार्गदर्शन के रूप में विचार किया जाना चाहिए ।

8. अपीलार्थी की ओर विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि माध्यस्थम् अधिनियम धारा 36 के अधीन फाइल किए गए रोक आवेदन का विनिश्चय करते समय सरकार को कोई विशेष उपचार प्रदान नहीं करता है और सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंध माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के अधीन फाइल किए गए रोक आवेदन का विनिश्चय करते समय लागू नहीं होंगे । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, सिविल प्रक्रिया संहिता के अधीन सरकार को भिन्न रूप में समझा जाता है जबकि माध्यस्थम् अधिनियम में ऐसी स्थिति नहीं है । उदाहरण के लिए, यह उल्लेख किया गया कि सरकार के विरुद्ध कोई वाद फाइल करने से पूर्व सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के अधीन दो

माह की सूचना दिए जाने का उपबंध किया गया है, माध्यस्थम् कार्यवाहियों के मामले में ऐसा नहीं है । उन्होंने यह भी दलील दी कि माध्यमस्थम् अधिनियम की धारा 18 में सभी अंतर्वलित पक्षकारों के साथ एक समान व्यवहार करने का अभिव्यक्त रूप से उपबंध किया गया है, जिसमें सरकार भी एक पक्षकार के रूप में सम्मिलित है ।

9. अनुकल्पत:, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि आदेश 27, नियम 8क के उपबंधों को विचार में लिया जाता है, तब भी न्यायालयों को पंचाट को रोके जाने का अशर्त आदेश पारित नहीं करना चाहिए और फिर भी अधिनिर्णीत रकम या इसके भाग को जमा करने का निदेश दे सकते हैं, क्योंकि उक्त नियम 8क में सरकार को केवल प्रतिभूति देने से छूट दी गई है जिसका यह अर्थ नहीं है कि न्यायालयों के लिए पंचाट को रोके जाने का अशर्त आदेश पारित करना आज्ञापक है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलीलों के समर्थन में इस न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों तथा विधि आयोग की 246वीं रिपोर्ट का अवलंब लिया, जिन पर तर्कों पर विचार करते समय विचार किया जाएगा ।

10. इसके अतिरिक्त, प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आनंद ग्रोवर ने यह दलील दी कि माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन अनुध्यात कार्यवाहियां दो प्रकार की हैं । माध्यस्थम् अधिनियम का अध्याय 6 और 7 माध्यस्थम् कार्यवाहियों के संचालन के संबंध में है, जबकि अध्याय 7, 8 और 9 पंचाट के पश्चात् की कार्यवाहियों के संबंध में हैं । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के अनुसार, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 (अध्याय 8 में आने वाली), जो पंचाट के प्रवर्तन के संबंध में है, सुसंगत उपबंध है । उपधारा (1) में यह विनिर्दिष्ट किया गया है कि पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अनुसार उसी रीति से प्रवर्तित किया जाएगा, मानो वह न्यायालय की डिक्री है और जो उपधारा (2) के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए प्रवर्तित होगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल के अनुसार, उपधारा (3) में प्रयुक्त "ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए" वाक्यांश से यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय को ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जो वह

ठीक समझे और ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएं, रोक मंजूर का यद्यपि न्यायिक्त: मार्गदर्शित, पूर्ण विवेकाधिकार है । यह दलील दी गई है कि उपधारा (3) के परंतुक में प्रयुक्त "सम्यक् रूप से ध्यान में रखते हुए" वाक्यांश सिविल प्रक्रिया संहिता के सभी उपबंधों, जिसमें कोई धनीय डिक्री भी है, को लागू होंगे । इस प्रकार यह दलील दी गई कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36(3) के फलस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता के सभी सुसंगत उपबंध अर्थात् आदेश 41, नियम 5 और आदेश 27, नियम 8क लागू होंगे ।

11. श्री ग्रोवर ने यह भी दलील दी कि धनीय डिक्री की रोक पर विचार करते समय आदेश 27, नियम 8क, सहपठित आदेश 41, नियम 5, प्रत्यक्ष रूप से लागू होगा । उन्होंने माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36(3) के परंतुक में प्रयुक्त "रखेगा" (सैल) शब्द पर जोर दिया, जिसमें, उनके अनुसार, धारा 36 के अधीन रोक आवेदन पर विचार करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता को आज्ञापक रूप से लागू किए जाने का उपबंध किया गया है । माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36(3) में प्रयुक्त "ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए" वाक्यांश केवल उच्च न्यायालय द्वारा रोक आवेदन का विनिश्चय करने और लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों के लिए प्रयोग किए जाने वाले विवेकाधिकार के विषय में है और कानून में विनिर्दिष्ट अनुसार कोई शर्तें नहीं हैं । अत: उन्होंने यह दलील दी कि धारा 36(3) के परंतुक में दिए गए "सम्यक् ध्यान में रखते हुए" वाक्यांश का परंतुक के आरंभिक भाग में "रखेगा" (सैल) शब्द के प्रयोग के कारण वही आज्ञापक अर्थ होगा ।

12. यह भी आग्रह किया गया है कि आदेश 27, नियम 8क सरकार के विरुद्ध वादों के संबंध में रोक लागू होने के संबंध है, जो कि प्राइवेट पक्षकारों से सुभिन्न है । चूंकि, सरकार को सदैव ऋणशोधक्षम समझा जाता है और उसके विरुद्ध डिक्री का आदरण करने की प्रत्याशा की जाती है, इसलिए प्राइवेट पक्षकारों के असमान सरकार अपने विरुद्ध अंतिम डिक्री के प्रवर्तन का परिहार नहीं कर सकती है और इस प्रकार सरकार के निर्णीत ऋणी होने की दशा में पंचाट पर आवश्यक रूप से रोक लगाया जाना अपेक्षित है । उन्होंने आगे यह दलील दी कि आदेश 41, नियम 5(3) के अधीन, यदि ऐसा आदेश नहीं किया जाता है तो

निष्पादन के रोके जाने का आवेदन करने वाले पक्षकार द्वारा पारिणामिक सारवान् हानि को दर्शित किया जाना चाहिए और सरकार की दशा में, चूंकि उसके विरुद्ध बड़ी संख्या में माध्यस्थम् कार्यवाहियां की जाती हैं, इसलिए उन्हें इसके परिणामस्वरूप संचयी रूप से सारवान् हानि होगी । अतः, दलील यह है कि आदेश 41, नियम 5(5) में आवेदक से निक्षेप करने या प्रतिभूति देने की अपेक्षा की गई है और असफल रहने पर रोक मंजूर नहीं की जाएगी, किंतु आदेश 27, नियम 8क के उपबंधों को देखते हुए सरकार को कोई प्रतिभूति देने या कोई निक्षेप करने से छूट होगी । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, प्रतिभूति देना एक वंश (जीनस) है और निक्षेप करना एक प्रजाति (स्पेसिज) है और जब आदेश 27, नियम 8क के अधीन सरकार द्वारा स्वयं प्रतिभूति का निक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं है, और जब सरकार द्वारा वंश (प्रतिभूति) ही नहीं दी जाती है तब सरकार के लिए धन का निक्षेप किया जाना अपेक्षित नहीं होगा ।

13. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तारपूर्वक सुना और अभिलेख पर सामग्री का परिशीलन किया । इस मामले के तथ्यों के उचित मूल्यांकन के लिए माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के सुसंगत उपबंध इसमें नीचे उद्धृत किए जाते हैं :–

माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996

"**धारा 18. पक्षकारों से समान बर्ताव** – पक्षकारों से समानता का बर्ताव किया जाएगा और प्रत्येक पक्षकार को अपना मामला प्रस्तुत करने का पूर्ण अवसर दिया जाएगा ।"

[1]"**धारा 36. प्रवर्तन** –

---

[1] धारा 19, धारा 36 के लिए (23.10.2015 से) 2016 के अधिनियम सं. 3 द्वारा प्रतिस्थापित । प्रतिस्थापन से पूर्व धारा 36 निम्न प्रकार से थी :

"36. प्रवर्तन – जहां धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है या ऐसा आवेदन किए जाने पर उसे नामंजूर कर दिया गया है, वहां पंचाट, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन उस रीति से प्रवर्तित किया जाएगा मानो वह न्यायालय की डिक्री हो ।"

(1) जहां धारा 34 के अधीन माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने का समय समाप्त हो गया है, तब उपधारा (2) के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, ऐसा पंचाट सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों के अनुसार उसी रीति में प्रवर्तित किया जाएगा, मानों वह न्यायालय की डिक्री हो ।

(2) जहां धारा 34 के अधीन न्यायालय में माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन फाइल किया गया है, वहां ऐसा आवेदन फाइल करने से वह पंचाट स्वत: अप्रवर्तनीय नहीं हो जाएगा, जब तक कि न्यायालय उक्त प्रयोजन के लिए किए गए एक अलग आवेदन पर उपधारा (3) के उपबंधों के अनुसार उक्त माध्यस्थम् पंचाट के प्रवर्तन को रोके जाने का आदेश प्रदान नहीं करता है ।

(3) माध्यस्थम् पंचाट के प्रवर्तन को रोके जाने के लिए उपधारा (2) के अधीन आवेदन फाइल करने पर, न्यायालय ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए, जो वह ठीक समझे, लेखबद्ध किए गए कारणों से ऐसे पंचाट के प्रवर्तन पर रोक मंजूर कर सकेगा :

परंतु धन के संदाय के लिए माध्यस्थम् पंचाट के मामले में रोक मंजूर करने के आवेदन पर विचार करते समय न्यायालय सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के उपबंधों के अधीन किसी धनीय डिक्री पर रोक मंजूर करने वाले उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखेगा ।"

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908

"आदेश 27, नियम 8क

8क. कुछ मामलों में सरकार से या लोक अधिकारी से कोई प्रतिभूति अपेक्षित न की जाएगी – सरकार से या जहां सरकार ने वाद की प्रतिरक्षा का जिम्मा लिया है वहां किसी ऐसे लोक अधिकारी से जिस पर किसी ऐसे कार्य के बारे में वाद लाया गया है जिसके संबंध में यह अभिकथित किया गया है कि वह उसने अपनी पक्षीय हैसियत में किया है, आदेश 41 के नियम 5 और 6 में यथा

वर्णित प्रतिभूति की अपेक्षा नहीं की जाएगी ।"

"आदेश 41, नियम 1

अपील का प्ररूप/ज्ञापन के साथ क्या-क्या दिया जाएगा – (1) हर अपील अपीलार्थी या उसके प्लीडर द्वारा हस्ताक्षरित ज्ञापन के रूप में की जाएगी और न्यायालय में या ऐसे अधिकारी के समक्ष जो न्यायालय इस निमित्त नियुक्त करे, उपस्थापित की जाएगी । ज्ञापन के साथ उस डिक्री की प्रति होगी जिसकी अपील की जाती है और (जब तक अपील न्यायालय वैसा करने से अभिमुक्ति न दे दे) उस निर्णय की प्रति होगी जिस पर वह डिक्री आधारित है :

परंतु जहां दो या दो से अधिक वादों का साथ-साथ विचारण किया गया है और उनके लिए एक ही निर्णय दिया गया है और उस निर्णय के अन्तर्गत किसी डिक्री के विरुद्ध चाहे उसी अपीलार्थी द्वारा या भिन्न अपीलार्थियों द्वारा दो या दो से अधिक अपीलें फाइल की गई हैं वहां अपील न्यायालय एक से अधिक प्रतियां फाइल करने से अभिमुक्ति दे सकेगा ।

(2) ज्ञापन की अंतर्वस्तुएं – उस डिक्री पर जिसकी अपील की जाती है, आक्षेप के आधार, ज्ञापन में किसी तर्क या विवरण के बिना संक्षिप्त: और सुभिन्न शीर्षकों में उपवर्णित होंगे और ऐसे आधार क्रम से संख्यांकित होंगे ।

(3) जहां अपील, धन के संदाय के लिए किसी डिक्री के निष्पादन में किए गए किसी आदेश के विरुद्ध है वहां अपीलार्थी इतने समय के भीतर जितना अपील न्यायालय अनुज्ञात करे, अपील में विवादग्रस्त रकम निक्षिप्त करेगा या उसके संबंध में ऐसी प्रतिभूति देगा जो न्यायालय ठीक समझे ।"

"आदेश 41, नियम 5

अपील न्यायालय द्वारा रोका जाना – (1) अपील का प्रभाव जिस डिक्री या आदेश की अपील की गई है, उसके अधीन की कार्यवाहियों को रोकना नहीं होगा, किन्तु यदि अपील न्यायालय आदेश दे तो कार्यवाहियां रोकी जा सकेंगी । केवल इस कारण से कि डिक्री से अपील की गई है, डिक्री का निष्पादन नहीं हो जाएगा,

किन्तु अपील न्यायालय ऐसी डिक्री के निष्पादन के रोके जाने के लिए आदेश पर्याप्त हेतुक से दे सकेगा ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

स्पष्टीकरण – डिक्री के निष्पादन को रोकने के लिए अपील न्यायालय का आदेश प्रथम बार के न्यायालय को ऐसे आदेश की संसूचना की तारीख से प्रभावी होगा, किन्तु निष्पादन को रोकने के लिए आदेश की या उसके प्रतिकूल किसी आदेश की, अपील न्यायालय से प्राप्ति होने तक प्रथम बार का न्यायालय अपीलार्थी की उसकी वैयक्तिक जानकारी पर आधारित ऐसे शपथपत्र पर कार्यवाही करेगा जिसमें यह कथित हो कि डिक्री के निष्पादन को रोकने के लिए अपील न्यायालय द्वारा आदेश दे दिया गया ।

(2) जिस न्यायालय ने डिक्री पारित की थी उसके द्वारा रोका जाना – जहां किसी अपीलनीय डिक्री के निष्पादन के रोके जोने के लिए आवेदन उस समय के अवसान से पूर्व जो उसकी अपील करने के लिए अनुज्ञात है, किया जाता है वहां डिक्री पारित करने वाला न्यायालय निष्पादन के रोके जाने के लिए आदेश पर्याप्त हेतुक दर्शित किए जाने पर दे सकेगा ।

(3) निष्पादन रोके जाने के लिए कोई भी आदेश उप-नियम (1) या उप-नियम (2) के अधीन तब तक नहीं किया जाएगा जब तक उसे देने वाले न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता कि –

(क) यदि वह आदेश न किया गया तो परिणाम यह हो सकता है कि निष्पादन के रोके जाने का आवेदन करने वाले पक्षकार को सारवान् हानि हो ;

(ख) आवेदन अयुक्तियुक्त विलंब के बिना किया गया है ; तथा

(ग) आवेदक ने ऐसी डिक्री या आदेश के सम्यक् रूप से पालन के लिए जो अंत में उसके लिए आबद्धकर हो, प्रतिभूति दे दी है ।

(4) उप-नियम (3) के उपबंधों के अधीन रहते हुए न्यायालय आवेदन की सुनवाई लंबित रहने तक निष्पादन के रोके जाने के

लिए एकपक्षीय आदेश कर सकेगा ।

(5) पूर्वगामी उपनियमों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां अपीलार्थी नियम 1 के उप-नियम (3) में विनिर्दिष्ट निक्षेप करने में या प्रतिभूति देने में असफल रहता है वहां न्यायालय डिक्री का निष्पादन रोकने वाला आदेश नहीं करेगा ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

14. माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 तारीख 23 अक्तूबर, 2015 से भूतलक्षी प्रभाव से 2016 के अधिनियम सं. 3 द्वारा संशोधित/प्रतिस्थापित की गई थी । माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 की उपधारा (3) विधि आयोग की 246वीं रिपोर्ट के आधार पर पुर:स्थापित की गई थी, जो निम्न प्रकार से है :–

चुनौती की स्वीकृति पर पंचाट के प्रवर्तन पर स्वत: रोक

43. अधिनियम की धारा 36 यह स्पष्ट करती है कि कोई माध्यस्थम् पंचाट डिक्री के रूप में धारा 38 के अधीन याचिका फाइल करने की समय की समाप्ति के पश्चात् या धारा 34 के अधीन याचिका के खारिज होने के पश्चात् ही प्रवर्तनीय होती है । दूसरे शब्दों में, धारा 34 के अधीन याचिका की विचाराधीनता माध्यस्थम् पंचाट को अप्रवर्तनीय बनाता है । उच्चतम न्यायालय ने नेशनल एल्यूमीनियम कं. लि. **बनाम** प्रेस्टील एंड फैब्रीकेशन [(2004) 1 एस. सी. सी. 540] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 36 के आधार पर न्यायालय में पंचाट का कोई भाग जमा करने हेतु हारे हुए पक्षकार को निदेश देते हुए आदेश पारित करना अननुज्ञेय था । यद्यपि, यह विनिश्चय धारा 42 के अधीन उच्चतम न्यायालय की ऐसा आदेश पारित करने की शक्तियों के संबंध में था, फिर भी बम्बई उच्च न्यायालय ने एफकान्स इंफ्रास्ट्रक्चर लि. **बनाम** बोर्ड आफ ट्रस्टीज, पोर्ट आफ मुंबई [2014 (1) आर्बि. एल. आर. 512 (बाम्बे)] वाले मामले में अधिनियम की धारा 9 के अधीन न्यायालय की शक्तियों को भी वही सिद्धांत लागू किया । अत:, धारा 34 के अधीन याचिका की

स्वीकृति वस्तुत: जीतने वाले पक्षकार/पंचाट के लेनदार के लिए प्रक्रिया को गतिहीन बनाता है ।

44. नेशनल एल्यूमीनियम वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित शब्दों में वर्तमान स्थिति की आलोचना की :

"तथापि, हम यह ध्यान देते हैं कि अधिनियम की धारा 34 के अधीन उक्त पंचाट को चुनौती देने वाले आवेदन के फाइल किए जाने के क्षण से ही जो न्यायालय के लिए पक्षकारों की कोई शर्त लगाने का कोई विवेकाधिकार न होने के कारण पंचाट का निष्पादन का यह स्वत: निलंबन, हमारी राय में, अनुकल्पी विवाद समाधान प्रणाली, माध्यस्थम् जिसका अंग है, के उद्देश्य को ही विफल करता है । हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि संबद्ध मंत्रालय द्वारा संसद् को ऐसे मामलों में उपयुक्त अंतरिम आदेश पारित करने हेतु सिविल न्यायालय को सशक्त करते हुए प्रस्ताव के साथ धारा 34 को संशोधित करने की सिफारिश की जाए । ऐसे संशोधन की अत्यावश्यकता को ध्यान में रखते हुए, हम निष्कपटत: यह आशा करते हैं कि विधि में अपेक्षित परिवर्तन लाने के लिए यथाशीघ्र संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा आवश्यक कदम उठाए जाएं ।"

45. इस रिष्टि को सुधारने के लिए आयोग द्वारा अधिनियम की धारा 36 में कतिपय संशोधन सुझाए गए हैं जो यह उपबंध करते हैं कि धारा 34 के अधीन आवेदन करने मात्र से ही पंचाट को अप्रवर्तनीय नहीं बनाया जाएगा ।

सारत:, विधि आयोग ने स्पष्ट रूप से यह सिफारिश की है कि माध्यस्थम् पंचाट पर स्वत: रोक नहीं होनी चाहिए । ऐसी सिफारिश करते हुए विधि आयोग की रिपोर्ट में सरकार के लिए कोई अपवाद नहीं रखा गया है । विधि आयोग की उक्त रिपोर्ट के आधार पर पुरानी धारा 36 को वर्ष 2016 में तारीख 23 अक्तूबर, 2015 से भूतलक्षी प्रभाव के साथ प्रतिस्थापित किया गया था ।

15. माध्यस्थम् अधिनियम की संशोधित धारा 36 में यह उपबंधित है कि : (क) माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन करने

का समय समाप्त होने के पश्चात् (अर्थात् पंचाट से 90 दिन) पंचाट इस प्रकार प्रवर्तित किया जाएगा मानो वह न्यायालय की डिक्री हो ; (ख) धारा 34 के अधीन आवेदन फाइल करने से पंचाट स्वत: अप्रवर्तनीय नहीं हो जाएगा ; (ग) पंचाट के निष्पादन को रोके जाने के लिए आवेदन करने पर न्यायालय को रोक मंजूर करने का विवेकाधिकार है, जो ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए हो सकेगा, जैसा न्यायालय ठीक समझे ; (घ) कोई रोक आदेश पारित करते समय न्यायालय को धनीय डिक्री पर रोक मंजूर करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखा जाना है।

16. प्रत्यर्थी-पश्चिम बंगाल राज्य की ओर से दी गई दलीलों का मुख्य आधार यह है कि सरकार के विरुद्ध कोई धनीय डिक्री पारित होने की दशा में और जिसके निष्पादन के लिए प्रार्थना की जाती है, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 नियम 8क के उपबंधों के अधीन सरकार से कोई प्रतिभूति अपेक्षित नहीं होगी । यदि प्रत्यर्थी की इस दलील को स्वीकार किया जाता है तब इसका अर्थ यह होगा कि किसी सरकार द्वारा माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल करने मात्र से पंचाट अप्रवर्तनीय हो जाएगा क्योंकि रोक आदेश यंत्रवत् रीति में और प्रक्रिया के रूप में, सरकार-निर्णीत ऋणी के विरुद्ध कोई शर्त अधिरोपित किए बिना, पारित किया जाएगा । यदि यह दलील स्वीकार की जाती है तो इसका प्रभाव यह होगा कि जहां तक सरकार का संबंध है, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के असंशोधित उपबंध स्वत: प्रवृत्त हो जाएंगे ।

17. इस पृष्ठभूमि में, हमें अब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के मुकाबले माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 के प्रभाव पर विचार करना है । माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 की उपधारा (3) यह आदिष्ट है कि माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल करने के साथ या फाइल करने के पश्चात् फाइल किए गए रोक आवेदन पर विचार करते समय, यदि रोक मंजूर की जानी है तब यह ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए होगी जो ठीक समझी जाएं । उक्त उपधारा में स्पष्ट तौर पर यह आदिष्ट किया गया है कि

पंचाट के प्रवर्तन को रोके जाने की मंजूरी लेखबद्ध किए गए कारणों से "ऐसी शर्तों के अध्यधीन रहते हुए होगी जो न्यायालय ठीक समझे" । इस धारा के परंतुक में स्पष्ट किया गया है कि न्यायालय "सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन किसी धनीय डिक्री के निष्पादन पर रोक मंजूर करने वाले उपबंधों को सम्यक् ध्यान में रखेगा" । "सम्यक् ध्यान में रखेगा" वाक्यांश का केवल यह अर्थ होगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों को विचार में लिया जाना चाहिए और इसका यह अर्थ नहीं है कि वे आज्ञापक हैं । **श्रीसीताराम शुगर कंपनी लिमिटेड** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में "ध्यान में रखते हुए" वाक्यांश पर विचार करते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "उपधारा में 'ध्यान में रखते हुए' शब्द चीनी का मूल्य अवधारित करने के लिए सरकार के सामान्य मार्गदर्शन के लिए विधायी अनुदेश हैं । वे कड़ाईपूर्वक आज्ञापक नहीं है, अपितु सारत: निदेशात्मक हैं ।"

18. हमारे मत में, वर्तमान संदर्भ में, प्रयुक्त वाक्यांश सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों 'को ध्यान में रखते हुए, है, न कि सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंधों 'के अनुसार' है । पश्चात्वर्ती दशा में, ये आज्ञापक होते, किंतु माध्यस्थम् अधिनियम के नियम 36(3) में यथावर्णित रूप में ये केवल निदेशात्मक या मार्गदर्शक कारक के रूप में होंगे । उक्त धारा 36 में सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रतिनिर्देश मात्र से इसका ऐसी रीति में अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता है कि यह बात स्वयं मुख्य कानून (माध्यस्थम् अधिनियम) में प्रदत्त शक्ति को छीन लेती है । इसे एक सामान्य मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में लिया जाना चाहिए, जो माध्यस्थम् अधिनियम के मुख्य उपबंध को अप्रयोज्य नहीं बनाएगा । सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध एक मार्गदर्शक के रूप में अनुसरण किए जाने चाहिए, जबकि माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों को आवश्यक रूप से पहले लागू किया जाना चाहिए । चूंकि, माध्यस्थम् अधिनियम एक स्वत: पूर्ण अधिनियम है, इसलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध केवल वहां लागू होंगे जहां तक वे माध्यस्थम् अधिनियम की भावना और उपबंधों के असंगत न हों ।

---

[1] (1990) 3 एस. सी. सी. 223.

19. कलकत्ता उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि क्या सरकार द्वारा फाइल की गई अपील में, सरकार सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क की सहायता लेकर आक्षेपित डिक्री के निष्पादन पर रोक प्राप्त करने का हकदार है, भले ही आदेश 41 के नियम 5 के उप-नियम (3) के खंड (क) और (ख) में वर्णित शर्तों का पालन न किया गया हो, निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

> "36. पूर्वोक्त संविवाद का समाधान करने के लिए, संहिता में आदेश 27, नियम 8क को सम्मिलित करने के विधायी आशय का अवलोकन करना होगा । पूर्वोक्त उपबंध सरकार को आदेश 41 के नियम 5 और 6 में यथा वर्णित किसी डिक्री के सम्यक् पालन के लिए प्रत्याभूति के रूप में प्रतिभूति देने से छूट देने के लिए उपबंधित किया गया था । ऐसी छूट के होते हुए भी, अपीलार्थी सरकार के पक्ष में किसी डिक्री के निष्पादन को रोक देने के लिए न्यायालय की वैवेकिक शक्ति का प्रयोग केवल तब किया जा सकता है यदि वह न्यायालय का आदेश 41 के नियम 5(3) के खंड (क) और (खं) के विद्यमान होने के बारे में समाधान कर देती है । चूंकि रोक मंजूर करने के लिए अपीलार्थी को 'सारवान हानि' होने की बात एक पूर्व-शर्त है, इसलिए, किसी धनीय डिक्री के निष्पादन को सामान्यतया रोका नहीं जाता है चूंकि किसी धनीय डिक्री की तुष्टि अपीलार्थी को हुई अपूरणीय क्षति की कोटि में नहीं आती है क्योंकि अपील मंजूर होने की दशा में उसे प्रत्यावर्तन का अधिकार उपलब्ध है [सिहोर नगर पालिका ब्यूरो **बनाम** भाभलूभाई वीराभाई (2005) 4 एस. सी. सी. 1, पैरा 6 वाला मामला देखें] । ऐसी परिस्थितियों में, जब न्यायालय किसी धनीय डिक्री के निष्पादन को रोके जाने के लिए अपीलार्थी राज्य के पक्ष में अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है, तो उसे पक्षकारों के बीच साम्य का अवश्य संतुलन बनाए रखना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि डिक्रीदार को ऐसी डिक्री के निष्पादन को रोके जाने के कारण अनुचित कठिनाई कारित न हो । अतः, समुचित मामलों में

न्यायालय अपने विवेकाधिकार से डिक्रीत राशि के एक भाग का निक्षेप करने का निदेश दे सकता है जिससे डिक्रीदार उसे प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अपील के परिणाम के अध्यधीन रहते हुए व्यपहृत कर सके । डिक्रीत राशि का निक्षेप करने के लिए ऐसा निदेश डिक्री के सम्यक् पालन के लिए प्रतिभूति देने के प्रयोजन के लिए नहीं है अपितु पक्षकारों पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अपील के परिणाम के अध्यधीन रहते हुए डिक्री के निष्पादन को रोके जाने की एक शर्त के रूप में डिक्री की भागत: तुष्टि सुनिश्चित करने के लिए एक साम्यापूर्ण उपाय है ।

37. यह अभिनिर्धारित करने से कि न्यायालय किसी धनीय डिक्री के निष्पादन पर सरकार के पक्ष में रोक मंजूर करते समय ऐसे साम्यापूर्ण विवेकाधिकार से वंचित है, ऐसे सुपात्र डिक्री धारकों को गंभीर कठिनाई कारित होगी जो प्रस्तुत मामले के तथ्यों में संपूर्ण डिक्री के निष्पादन को रोके जाने के लिए प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अपील के परिणाम के अध्यधीन एक शर्त के रूप में डिक्री की भागत: तुष्टि का उपभोग करने के हकदार हो सकते हैं ।

38. अत:, यह राय व्यक्त की जाती है कि यद्यपि आदेश 27, नियम 8क में अपीलार्थी-सरकार को किसी धनीय डिक्री के निष्पादन को रोके जाने की मांग करने पर नियम 1(3) के निबंधनों को अनुसार प्रतिभूति देने की आज्ञापक बाध्यता से छूट दी जा सकती है जैसा कि आदेश 41 के नियम 5(5) में है, तो भी उक्त उपबंध को समुचित मामलों में डिक्री के निष्पादन पर रोक मंजूर करने के लिए एक शर्त के रूप में डिक्रीत रकम का निक्षेप करने का निदेश देने के न्यायालय के विवेकाधिकार पर एक आत्यंतिक बाधा के रूप में लागू होना नहीं कहा जा सकता है, विशिष्ट रूप से जब ऐसा निदेश प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना और अपील के परिणाम के अध्यधीन रहते हुए डिक्री की भागत: तुष्टि में डिक्रीदार को डिक्री के एक भाग को व्यपहृत करने की स्वतंत्रता के साथ दिया गया हो ।"

हम कलकत्ता उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा अपनाए गए ऐसे

दृष्टिकोण से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते हैं और इस प्रकार हम इससे सहमत हैं ।

20. अन्यथा भी, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के अनुशीलन मात्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह नियम केवल सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 5 और 6 में यथा वर्णित प्रतिभूति के संबंध में है, जिसकी सरकार द्वारा फाइल किए गए रोक आवेदन पर विचार करते समय मांग नहीं की जानी चाहिए । तथापि, इसमें यह उपबंधित नहीं है कि किसी धनीय डिक्री के विरुद्ध अपील में डिक्रीत रकम जमा किए जाने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है ।

21. यह भी उल्लेखनीय है कि जब वर्ष 1937 में सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 27, नियम 8क सम्मिलित किया था, तब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 5 के केवल चार उप-नियम थे । आदेश 41 के नियम 5 में उप-नियम (5) 1976 के अधिनियम सं. 104 द्वारा तारीख 1 फरवरी, 1977 से अंत:स्थापित किया गया था । इससे पूर्व, पूर्वोक्त नियम 5 का उप-नियम (3)(ग) था जिसमें उपबंधित था कि निष्पादन पर रोक के लिए तब तक कोई आदेश नहीं किया जाना चाहिए जब तक न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता है कि आवेदक द्वारा डिक्री के पालन के लिए प्रतिभूति दे दी गई है । जब रोक मंजूर करने के समय पर केवल प्रतिभूति दी जानी होती थी, इसी संदर्भ में सरकार को कतिपय संरक्षा देने के लिए सरकार से प्रतिभूति की अपेक्षा न करने का उपबंध करके सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 27 का नियम 8क सम्मिलित किया गया था । अधिसंभाव्यत: इसी कारण से सरकार को सदैव ऋणशोधक्षम समझा जाता है और इसीलिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 के नियम 8क के अधीन प्रतिभूति देने से छूट दी गई थी । तथापि, वर्ष 1976 में, सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 5 का उप-नियम (5) अंत:स्थापित किया गया था, जो निम्न प्रकार से है :–

> "(5) पूर्वगामी उपनियमों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, जहां अपीलार्थी नियम 1 के उप-नियम (3) में विनिर्दिष्ट निक्षेप करने में या प्रतिभूति देने में असफल रहता है वहां

न्यायालय डिक्री का निष्पादन रोकने वाला आदेश नहीं करेगा ।"

इस उप-नियम में रोक की मांग करने वाले डिक्रीदार द्वारा निक्षेप करने या प्रतिभूति देने का उपबंध है । इस प्रकार इसका यह अर्थ है कि वर्ष 1977 के पश्चात् अपील न्यायालय को डिक्रीत रकम का निक्षेप करने का निदेश देने की शक्ति है जो पहले सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41 के नियम 5 के उप-नियम (3) के अधीन केवल प्रतिभूति देने तक सीमित थी । यह उल्लेखनीय है कि उप-नियम (5) के अंत:स्थापन के पश्चात् सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 नियम 8क में राज्य सरकार को ऐसा निक्षेप करने से छूट नहीं देता है और न्यायालय को अब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम (5) के अधीन यह निदेश देने की शक्ति है ।

22. इसके अतिरिक्त, यह ध्यातव्य है कि सिविल प्रक्रिया संहिता का आदेश 27, नियम 8क वर्ष 1937 में तब अंत:स्थापित किया गया था जब हमारे देश पर ब्रिटिश क्राउन का शासन था । यह नियम तत्कालीन सरकार (क्राउन) के हित की संरक्षा के लिए ब्रिटिश राज के काल के दौरान लाया गया था । एक मामले पर विचार करते हुए जहां पश्चिम बंगाल राज्य कलकत्ता म्यूनिसिपल ऐक्ट, 1951 की धारा 218 के अधीन यथा अपेक्षित लाइसेंस प्राप्त किए बिना स्वामी के रूप में व्यापार कर रहा था और कलकत्ता (अब कोलकाता) में एक बाजार का अधिष्ठाता था, इस न्यायालय की संविधान पीठ ने **अधीक्षक और विधि परामर्शी, पश्चिम बंगाल राज्य** बनाम **कलकत्ता निगम**[1] वाले मामले में इस प्रश्न पर विचार किया था कि क्या इस न्यायालय को प्रिवी कौंसिल द्वारा क्राउन के संदर्भ में कानून का निर्वचन करने के लिए स्वीकार किए गए अर्थान्वयन के नियम को अपनाना चाहिए या नहीं और यह अभिनिर्धारित किया कि "वर्तमान ताने-बाने में उक्त अर्थान्वयन का नियम क्यों असंगत और अनुपयुक्त है इसके बहुत से कारण हैं, हमारे यहां कोई क्राउन नहीं है और क्राउन के परमाधिकार और आदर्श पर आधारित पुरातन नियम की एक लोकतांत्रिक गणराज्य में कोई सुसंगतता नहीं है ; यह समता के सिद्धांत पर आधारित विधि के शासन के विसंगत है ।"

---

[1] (1967) 2 एस. सी. सी. 170.

23. हमारे सुविचारित मत में, जो उपबंध ब्रिटिश राज के दौरान सरकार (जो तब ब्रिटिश क्राउन था) को कतिपय रक्षोपाय देने के लिए वर्ष 1937 में सम्मिलित किया गया था वह आज के समय में, जब हमारे यहां एक लोकतांत्रिक सरकार है, लागू नहीं होगा ।

24. माध्यस्थम् कार्यवाहियां, विवादों का जल्दी/शीघ्र समाधान करने के प्रयोजनार्थ आवश्यक रूप से आनुकल्पिक विवाद निवारण व्यवस्था है और यदि मध्यस्थ द्वारा सरकार के विरुद्ध यथा पारित धनीय डिक्री-पंचाट को स्वत: रोक दिए जाने की अनुज्ञा दी जाती है, तो माध्यस्थम् के द्वारा विवाद का शीघ्र समाधान करने का प्रयोजन ही विफल हो जाएगा क्योंकि डिक्रीदार माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन आक्षेप फाइल करने मात्र से पंचाट के फायदों से पूरी तरह वंचित हो जाएगा । माध्यस्थम् अधिनियम एक विशेष अधिनियम है जिसमें पक्षकारों के बीच विवादों का शीघ्र निपटान करने का उपबंध किया गया है और अधिनियम की धारा 18 में यह स्पष्ट किया गया है कि पक्षकारों के साथ समानता का बर्ताव किया जाएगा । जब अधिनियम में ऐसा आदिष्ट है, तो एक पक्षकार के रूप में सरकार को दिया गया कोई विशेष बर्ताव नहीं हो सकता है । इसलिए माध्यस्थम् अधिनियम की स्कीम के अधीन, कोई विभेद नहीं किया गया है और न ही माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में किसी धनीय डिक्री पर रोक मंजूर करने के आवेदन पर विचार करते समय सरकार से कोई विशेष बर्ताव किया जाना चाहिए । जैसा कि हमने पहले ही ऊपर उल्लेख किया है, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 में सिविल प्रक्रिया संहिता के प्रति निर्देश न्यायालय के केवल इस मार्गदर्शन के लिए है कि कौन-सी शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं और वे शर्तें माध्यस्थम् अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिए ।

25. यह सत्य हो सकता है कि सिविल प्रक्रिया संहिता में सरकार से कतिपय मामलों में विशेष बर्ताव करने का उपबंध किया गया है, किंतु माध्यस्थम् अधिनियम के अधीन सरकार के विरुद्ध किसी मामले पर विचार करते समय ऐसा बर्ताव इस प्रकार लागू नहीं किया जा सकेगा ।

उदाहरण के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 में सरकार के विरुद्ध कोई वाद संस्थित करने से पूर्व दो माह की सूचना दिए जाने का उपबंध है । इसके अतिरिक्त, इसमें यह भी उपबंधित है कि सरकार के विरुद्ध कोई एकपक्षीय व्यादेश पारित नहीं किया जा सकता है । जबकि दूसरी ओर, माध्यस्थम् अधिनियम में सरकार द्वारा या सरकार के विरुद्ध माध्यस्थम् के विषय में ऐसा कोई विशेष उपबंध नहीं किया गया है । माध्यस्थम् अधिनियम में सरकार के विरुद्ध माध्यस्थम् कार्यवाहियों का अवलंब लेने से पूर्व सरकार को दो माह की सूचना दिया जाना अपेक्षित नहीं है । इसके अतिरिक्त, माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 9 और 17 में सरकार के विरुद्ध एकपक्षीय अंतरिम आदेश प्रदान करने का भी उपबंध किया गया है ।

26. माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 36 में भी माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन कार्यवाहियों में रोक मंजूर करने के आवेदन पर विचार करते समय सरकार से कोई विशेष बर्ताव करने का उपबंध नहीं किया गया है । पूर्वोक्त के साथ-साथ धारा 18 के उपबंधों, जिनमें पक्षकारों से समान बर्ताव करने का उपबंध किया गया है, पर विचार करते हुए हमारे मत में, यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसा कोई आपवादिक बर्ताव नहीं है जो माध्यस्थम् अधिनियम की धारा 34 के अधीन रोक के लिए आवेदन पर विचार करते हुए सरकार के साथ किया जाना चाहिए ।

27. यद्यपि, हमारा यह दृढ़ मत है कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27 के पुरातन नियम 8क का वर्तमान समय में कोई उपयोजन या निर्देश नहीं है, हम केवल यह मत व्यक्त करना चाहेंगे कि यदि यह मान लिया जाए कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 27, नियम 8क के उपबंध लागू किए जाने चाहिए, फिर भी ये केवल सरकार को प्रतिभूति देने से छूट देंगे, जबकि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 41, नियम 5 के अधीन न्यायालय को डिक्रीत रकम का पूर्णत: या भागत: निक्षेप करने और/या प्रतिभूति देने का निदेश देने की शक्ति है, जो न्यायालय को अधिनिर्णीत रकम और इसके भाग को निक्षेप करने का निदेश देने से निर्बंधित नहीं करेगी ।

28. पूर्वगामी कारणों से, हमारी यह राय है कि कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 21 जनवरी, 2010 के माध्यस्थम् पंचाट पर अशर्त रोक मंजूर करते हुए पारित आक्षेपित आदेश को विधि की दृष्टि से कायम नहीं रखा जा सकता है । तद्नुसार, हम ये अपीलें मंजूर करते हैं और कलकत्ता उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 13 दिसम्बर, 2018 को पारित आदेश को अभिखंडित करते हैं तथा 2018 के निष्पादन मामला सं. 297 (पाम डेवलेपमेंट्स प्रा. लि. बनाम पश्चिम बंगाल राज्य) में निष्पादन न्यायालय के तारीख 3 अगस्त, 2018 को पारित आदेश को प्रत्यावर्तित करते हैं । जैसा कि तारीख 3 अक्तूबर, 2018 के आदेश द्वारा पहले ही निदेशित किया गया है, याची-पंचाट धारक को कुर्क की गई रकम को निर्मोचित करने की प्रार्थना करने की स्वतंत्रता होगी ।

29. खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

जस.

[2019] 4 उम. नि. प. 432

आर. बी. डीलर्स प्राइवेट लिमिटेड

बनाम

मैट्रो रेल, कोलकाता

[2019 की विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 14078 और 14170]

17 जुलाई, 2019

न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा और न्यायमूर्ति एम. आर. शाह

भूमि अर्जन पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन में उचित प्रतिकर और पारदर्शिता अधिकार अधिनियम, 2013 (2013 का 30) – धारा 26, 27, 28 और 30 – भूमि अर्जन की दशा में धारा 30(1) के अधीन संदेय तोषण का अवधारण – धारा 30 की उपधारा (1) के अधीन यथा-अनुध्यात तोषण की संगणना कुल प्रतिकर की रकम, अर्थात्, अर्जित की